THE ECONOMIC TIMES

Date: 11-02-17

Food revolution: Indian packaged food has a global potential

India's traditional snacks, it turns out, are making huge inroads and even poised to overtake western ones, in the country's packaged foods market. If this deserves only two cheers, it is because desi snacks should be ruling shop shelves not just in India but across the world. Sugary soda and potato wafers have successfully invaded every market and no movie is complete in any cinema, whether in Delhi, Shanghai or Dhaka, without popcorn. Superior marketing has allowed mediocre fare to become staples of the good life in any culture. Suppose such sophisticated marketing, along with hygienic production and snazzy packaging, could be brought to bear on traditional Indian snacks.

India's regional and cultural diversity also means a great variety of different kinds of food: crunchy, soft, spicy, steamed, bland, finger food, bakes, fries, preserves, pickles, roasts, meats, vegetarian savouries and an endless array of sweet dishes, ranging from runny payas, kheer and prathaman to chunky barfis and pedas and amorphous halwa. Ready-to-cook foods are gaining ground in urban India, as double-income families look for quality and convenience. The likes of ITC and Amul have the muscle and the entrepreneurial energy to brand them and market them around the world, even as a large number of smaller companies cater to the demand from the desi diaspora. Indian food remains relatively untapped terrain for startups. Globally present Indian food would not just add to India's soft power but also enrich the Indian farmer and grow a vast food-processing industry.India's diverse agro-climatic conditions permit diverse crops, to each of which considerable value can be added, with a step-up in technology, as compared to traditional method of processing. With support from the food regulator to ensure quality and traceability, continuous power supply to run cold storages and food processing plants in rural areas, and good roads for transporting rural produce fast to urban markets and ports for exports, there is no reason why India's food processing industry should not produce a global champion.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-02-17

भारतीय प्रबंध संस्थानों को अधिक अधिकार देता नया विधेयक

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने मूलमंत्र 'न्यूनतम शासन, अधिकतम प्रशासन' को कम से कम एक अहम क्षेत्र में आगे बढ़ाने की पहल की है। वह क्षेत्र है भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम)। आईआईएम संस्थानों से जुड़ा विधेयक फिलहाल संसद की मंजूरी का इंतजार कर रहा है। इसके प्रमुख प्रावधानों में आईएमएम के निदेशकों की **नियुक्ति** का अंतिम अधिकार बोर्ड को देने का प्रस्ताव भी शामिल है। यह मसौदा विधेयक में अहम सुधार है जिसमें कहा गया था कि अगर विजिटर (राष्ट्रपति) खोज एवं चयन समिति की सिफारिशों से सहमत नहीं होंगे तो वह समिति को फिर से सिफारिश करने को कह सकते हैं। इस फैसले की अहमियत इस बात से समझी जा सकती है कि अधिकांश पुराने आईआईएम में निदेशक नहीं हैं या फिर उन्होंने मौजूदा **निदेशकों** को ही कुछ समय के लिए रुकने का अनुरोध किया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि छांटे गए

उम्मीदवारों को अक्सर मंत्रालय की मंजूरी के लिए इंतजार करना पड़ता है क्योंकि इसके काफी समय लगता है। अधिकांश नए आईआईएम तो अभी तक अपने निदेशक नियुक्त नहीं कर पाए हैं। कई उम्मीदवार तो व्यवस्था से आजिज आकर उम्मीदवारी से हट चुके हैं। इससे नियुक्ति की पूरी प्रक्रिया मजाक बनकर रह गई है।

ऐसे एक उम्मीदवार ने कहा कि वह इसलिए इस पद पर काम करने के इच्छुक थे क्योंकि इससे प्रतिष्ठा जुड़ी है लेकिन अब उन्होंने आईआईएम को पत्र लिखकर कहा कि वह इसके लिए उपलब्ध नहीं है। उन्होंने यह फैसला इसलिए किया क्योंकि उन्हें पांच महीने से मंत्रालय की ओर से कोई जवाब नहीं मिला। संबंधित आईआईएम निदेशक के बिना चलता रहा क्योंकि खोज प्रक्रिया को नए सिरे से शुरू करना पड़ा। उक्त उम्मीदवार ने कहा, 'जानी मानी हस्तियों की मौजूदगी वाले आईआईएम के बोर्ड खुद कोई फैसला क्यों नहीं ले सकते। इसका कोई कारण नजर नहीं आता।' पिछली मानव संसाधन मंत्री स्मृति ईरानी ने एक विशेषज्ञ समिति की उस सिफारिश को खारिज कर दिया था जिसमें आईआईएम अहमदाबाद के चेयरमैन पद के लिए कुछ कॉर्पोरेट दिग्गजों के नाम सुझाए गए थे। ईरानी ने सिफारिश को खारिज करने का कोई कारण नहीं बताया।

इसके उलट अंतरराष्ट्रीय प्रबंधन संस्थानों के बोर्ड स्वतंत्र रूप से ऐसे निर्णय लेते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि ऐसे संस्थानों के डीन छह महीने पहले ही चुन लिए जाते हैं ताकि उन्हें माहौल से वाकिफ होने का मौका मिल जाए। आईआईएम विधेयक से हमने सुधार की दिशा में कितना रास्ता तय कर लिया है इसका पुष्टिï इस बात से होती है कि मसौदा विधेयक ने आईआईएम बोर्डों को मंत्रालय के हाथों की कठपुतली बनाकर रख दिया था। इसमें इस बात की भी अनदेखी की गई थी कि बड़े आईआईएम वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर हैं और अपना फंड खुद जुटाने को समर्पित हैं। चेयरमैन की नियुक्ति के बारे में मसौदा विधेयक में कहा गया था कि उसकी नियुक्ति केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के आधार पर की जाएगी। इसमें सरकार के हस्तक्षेप की पूरी गुंजाइश थी। विधेयक में कहा गया था कि एक समन्वय मंच होगा जो केंद्र सरकार के दिशानिर्देशों के मुताबिक काम करेगा। इसका मतलब यह था कि इस मंच की अध्यक्षता मंत्री करेंगे और इसमें केंद्रीय राज्य मंत्री, राज्यों के चार मंत्री, मंत्रालय के केंद्रीय सचिव, चेयरपर्सन और निदेशक, तीन जाने माने लोग होंगे जिनमें एक महिला शिक्षाविद होंगी। पहले नामांकन में संस्थानों को नाम सुझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। पिछले विधेयक से आईआईएम और सरकार के बीच मतभेद पैदा हो गए थे। इसमें सरकार को लगभग सभी अहम मामलों में अधिकार दिए गए थे। बोर्ड के गठन और चेयरमैन की नियुक्ति करने, फीस तय करने और नए अकादमिक विभाग बनाने के लिए भी सरकार की सहमति की जरूरत थी। नए विधेयक में इन मामलों को सुलझा लिया गया है और यह भी सुनिश्चित किया गया है कि प्रत्येक आईआईएम अपना पाठ्यक्रम तय करने और शिक्षा मानक तय करने के लिए स्वतंत्र है। छात्रों की संख्या बढ़ाने का फैसला भी संस्थानों को अपने स्तर पर करना है, इसमें सरकार की कोई भूमिका नहीं होगी।

इस बारे में सही कदम उठाने का श्रेय प्रधानमंत्री कार्यालय के अलावा मानव संसाधन मंत्री प्रकाश जावड़ेकर को जाता है। जावड़ेकर के लिए यह विश्वसनीय उपलब्धि है क्योंकि उनकी पूर्ववर्ती मंत्री को अपने 13 महीने के कार्यकाल में एक के बाद एक कई विवादों का सामना करना पड़ा था। इसकी वजह से भारत में शिक्षा गलत कारणों से चर्चा में रही। कम ही ऐसा होता है जब कोई मंत्री किसी अहम क्षेत्र से सरकार की भूमिका खत्म करने पर सहमत होता है लेकिन जावड़ेकर ने ऐसा किया। विधेयक के प्रावधानों के मुताबिक मानव संसाधन विकास मंत्री आईआईएम परिषद में अपनी भूमिका छोड़ देगा। यह परिषद आईआईएम संस्थानों के प्रशासन और रणनीति से जुड़ी है। अब आईआईएम बोर्ड के सदस्यों को अपनी उपयोगिता साबित करनी है।

इंसानी पहलू

दैनिक भास्कर

Date: 11-02-17

हिंदुत्व की नई परिभाषा में है सच्चा राष्ट्रवाद

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर संघचालक मोहन भागवत ने मध्यप्रदेश यात्रा के दौरान ऐसा बयान दे दिया है, जो हिंदुत्व शब्द की परिभाषा ही बदल सकता है। अभी तक भारत में हिंदू किसे कहा जाता है और अहिंदू किसे? पहले अहिंदू को जानें। जो धर्म भारत के बाहर पैदा हुए, वे अहिंदू यानी ईसाई, इस्लाम, पारसी, यहूदी आदि! जो धर्म भारत में पैदा हुए, वे हिंदू यानी वैदिक, पौराणिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिख, आर्यसमाजी, ब्रह्म समाजी आदि। इन तथाकथित हिंदू धर्म की शाखाओं में चाहे जितना भी परस्पर सैद्धांतिक विरोध हो, उन सब को एक ही छत्र के नीचे स्वीकार किया जाता है। हिंदू-अहिंदू तय करने के लिए किसी सिद्धांत की जरूरत नहीं है। इस निर्णय का आधार सैद्धांतिक नहीं, भौगोलिक है।

इसे ही आधार मानकर विनायक दामोदर सावरकर ने प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिंदुत्व' लिखा था। 'हिंदुत्व' की विचारधारा ने ही हिंदू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जन्म दिया था। सावरकरजी की मान्यता थी कि जिस व्यक्ति का 'पुण्यभू' और 'पितृभू' भारत में हो, वही हिंदू है। यानी जिसका पूजा-स्थल, तीर्थ, देवी-देवता, पैगंबर, मसीहा, पवित्र ग्रंथ आदि भारत के बाहर के हों, उसका पुण्यभू भी बाहर ही होगा। उसे आप हिंदू नहीं कह सकते चाहे भारत उसकी पितृभूमि हो यानी उसके पुरखों का जन्म स्थान हो। कोई भारत में पैदा हुआ है लेकिन, उसकी पुण्यभूमि मक्का-मदीना, यरुशलम, रोम या मशद है तो वह खुद को हिंदू कैसे कह सकता है? सावरकरजी की हिंदू की यह परिभाषा उस समय काफी लोकप्रिय हुई, क्योंकि उस समय मुस्लिम लीग का जन्म हो चुका था और इस्लाम के नाम पर अलग राष्ट्र की मांग जोर पकड़ने लगी थी। सावरकर का हिंदुत्व उस समय राष्ट्रवाद का पर्याय-सा बन गया था और लोग समझ रहे थे कि लीगी सांप्रदायिकता का यही करारा जवाब है। स्वयं सावकर ने भारत के आज़ाद होने के 15-20 साल बाद अपने अभिमत पर पुनर्विचार किया था।लेकिन संघ-प्रमुख मोहन भागवत ने 'पुण्यभू' की छूट देकर 'हिंदू' शब्द की परिभाषा को अधिक उदार बना दिया है। उन्होंने बैतूल के भाषण में कहा कि हिंदुस्तान में रहने वाला हर नागरिक उसी तरह हिंदू कहलाएगा, जैसे अमेरिका में रहने वाला हर नागरिक अमेरिकी कहलाता है, उसका धर्म चाहे जो हो। उनके इस तर्क को थोड़ा आगे बढ़ाएं तो यहां तक जा सकता है कि किसी नागरिक के पुरखे या वह स्वयं भी चाहे किसी अन्य देश में पैदा हुआ हो, यदि उसे नागरिकता मिल जाए तो वह खुद को अमेरिकी घोषित कर सकता है। यानी किसी के हिंदू होने में न धर्म आगे आएगा और न ही उसके और उसके पुरखों का जन्म-स्थल। यानी 'पुण्यभू' के साथ 'पितृभू' की शर्त भी उड़ गई। सैद्धांतिक और भौगोलिक दोनों ही आधार इस नई परिभाषा के कारण पतले पड़ गए।

यूं भी हिंदू शब्द तो शुद्ध भौगोलिक ही था। यह सिंधु का अपभ्रंश है। सिंध से ही हिंद बना है। प्राचीन फारसी में 'स' को 'ह' बोला जाता था, जैसे सप्ताह को हफ्ता! सिंध का हिंद हो गया। स्थान का स्तान हो गया। हिंद और स्तान मिलकर 'हिंदुस्तान' बन गया। हिंद से ही 'हिंदू', 'हिंदी', 'हिंदवी', 'हुन्दू', 'हन्दू', 'इंदू', 'इंडीज', 'इंडिया' और 'इंडियन' आदि शब्द निकले हैं। विदेशियों के लिए हिंदू शब्द भारतीय का पर्याय है। जब मैं पहली बार चीन गया तो चीन के विद्वान और नेता मुझे 'इंदुरैन' 'इंदुरैन' बोलते थे। यों तो भारत का प्राचीन नाम आर्यावर्त या भारत या भरतखंड ही है। मैंने वेदों, दर्शनशास्त्रों, उपनिषदों, आरण्यकों, रामायण, महाभारत या गीता में कहीं भी हिंदू शब्द कभी नहीं देखा। इस शब्द का प्रयोग तुर्की, पठानों और मुगलों ने पहले-पहल किया। वे सिंधु नदी पार करके भारत आए थे, इसलिए उन्होंने इस सिंधु-पर क्षेत्र को हिंदू कह दिया।भारतीयों ने विदेशियों या मुसलमानों द्वारा दिए गए इस शब्द को स्वीकार कर लिया, क्या यह हमारी उदारता नहीं है? ऐसे में

विदेशी मज़हबों के मानने वालों को अपना कहने में हमें एतराज क्यों होना चाहिए? यदि इस देश में भारत के 20-22 करोड़ लोगों को हम अपने से अलग मानेंगे तो हम खुद को राष्ट्रवादी कैसे कहेंगे? इस देश को हम मजहब के आधार पर बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक में बांट देंगे। हम राष्ट्रवादी नहीं होंगे बल्कि जिन्नावादी होंगे। दुनिया में पाकिस्तान ही एक मात्र देश है, जो मजहब के आधार पर बना है। पाकिस्तान की ज्यादातर परेशानियों का कारण भी यही है। भारत का निर्माण या अस्तित्व किसी धर्म, संप्रदाय, मजहब, वंशवाद या जाति के आधार पर नहीं हुआ है। इसीलिए इसे सिर्फ 'हिंदुओं' का देश नहीं कहा जा सकता है। हां, इस अर्थ में यह हिंदुओं का देश जरूर है कि जो भी यहां का बाशिंदा है, वह हिंदू है। मोहन भागवत का मंतव्य यही है। यह मंतव्य अत्यंत पवित्र है, क्योंकि यह 'हम' और 'तुम' के भेद को खत्म करता है। 'हिंदू' की इस परिभाषा से सहमत होने का अर्थ है, सभी पूजा-पद्धतियों को स्वीकार करना। गांधीजी इसे ही सर्वधर्म समभाव कहते थे। इसे आधार बनाएं तो फिर राष्ट्रवादिता से कोई भी अछूता नहीं रह सकता। इसी दृष्टि से मैं अपने अभिन्न मित्र और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्व सरसंघचालक स्व. कुप्प सी. सुदर्शन से कहा करता था कि भारत के मुसलमानों को राष्ट्रवादी धारा से जोड़ना बेहद जरूरी है। मुझे खुशी है कि राष्ट्रीय मुस्लिम मंच के जरिए वही काम आज हो रहा है। यह कितनी अद्भुत बात है कि यह मंच तीन तलाक का विरोध कर रहा है और मुस्लिम समाज में अनेक सुधारों की पहल भी कर रहा है। ऐसी पहल सभी धर्मों में क्यों नहीं होती?

यह इतिहास का एक बड़ा सत्य है और अकाट्य है कि किसी भी विचारधारा या सिद्धांत या धर्म का जन्म चाहे जिस देश में हुआ हो, उसके मानने वालों पर ज्यादा प्रभाव उनके अपने देश की परंपरा का ही होता है। इसी आधार पर दुबई के अपने एक भाषण में अरब श्रोताओं के बीच मैंने यह बात डंके की चोट पर कह दी थी कि भारत का मुसलमान दुनिया का श्रेष्ठतम मुसलमान है, क्योंकि भारत की हजारों साल की परम्परा उसकी रगों में बह रही है। बादशाह खान ने अब से लगभग 50 साल पहले मुझे काबुल में कहा था कि मैं पाकिस्तानी तो पिछले 19-20 साल से हूं, मुसलमान तो मैं हजार साल से हूं, बौद्ध तो मैं ढाई हजार साल से हूं और आर्य-पठान तो पता नहीं, कितने हजारों वर्षों से हूं। यदि इस तथ्य को सभी भारतीय स्वीकार करें तो सोचिए, हमारा राष्ट्रवाद कितना सुदृढ़ होगा।

वेदप्रताप वैदिक, भारतीय विदेश नीति परिषद के अध्यक्ष (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

जनसत्ता

Date: 10-02-17

दुरुस्त आयद

नर्मदा घाटी में सरदार सरोवर बांध परियोजना की चपेट में आए तमाम गांवों और वहां रहने वाले लोगों के विस्थापन और उनके मुआवजे का सवाल करीब तीन दशक पुराना है। लेकिन सरकारों के अपनी जिम्मेदारी से भागने के चलते यह मामला उलझा रहा है। अब बुधवार को सुप्रीम कोर्ट ने इस मसले पर एक अहम फैसला दिया है, जो प्रभावित परिवारों के लिए शायद राहत का सबब बन पाए। हालांकि अब भी बड़ी तादाद में ऐसे लोग हैं जो उचित मुआवजा नहीं मिल पाने पर अपना विरोध जता रहे हैं। अदालत के फैसले के मुताबिक जिन परिवारों की दो एकड़ जमीन सरदार सरोवर परियोजना के लिए अधिग्रहीत की गई, उन्हें साठ लाख रुपए मुआवजा दिया जाएगा।

इसका लाभ एक सौ तिरानबे गांवों के छह सौ **इक्यासी** परिवारों को मिलेगा। मुआवजा हासिल करने वालों से एक महीने के भीतर जमीन खाली करने का शपथपत्र लिया जाएगा। उसके बाद सरकार वह जमीन जबरन खाली करा सकती है। अदालत ने एक हजार तीन सौ अट्ठावन परिवारों को पंद्रह लाख रुपए प्रति परिवार देने का भी आदेश दिया।

जाहिर है, इतने लंबे समय के संघर्ष के बाद आया अदालत का फैसला उस इलाके के प्रभावित परिवारों के लिए एक बड़ी राहत है। गौरतलब है कि इस परियोजना में मध्यप्रदेश के एक सौ बानबे गांव, एक टाउनशिप और गुजरात के उन्नीस गांव डूब जाएंगे। इसके अलावा, जिस तरह मध्यप्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र के करीब **पैंतालीस** हजार विस्थापित परिवारों को डूबी जमीन के बदले जमीन न मिल पाने की शिकायत बनी हुई है और इसे लेकर विरोध सामने आया है, उससे यही लगता है कि अभी इस मसले का एक मुकम्मल और न्यायपूर्ण हल बाकी है। कानून के मुताबिक सभी वयस्कों को पांच एकड़ भूमि मिलनी चाहिए। लेकिन हालत यह है कि जमीन पर अधिकार के आदेश के बावजूद बहुत सारे किसानों के पास न अपनी भूमि है, न आजीविका का कोई अन्य साधन। लगभग तीन दशक बाद भी इस **परियोजना** की जद में अपनी जमीन और जीविका के साधन गंवाने वालों के पुनर्वास का मामला अधर में लटका रहा है तो जाहिर है कि विकास के दावों की मार झेलने वालों के प्रति सरकार कितनी संवेदनशील है।

एक बड़े आंदोलन के बावजूद जब आखिर सरदार सरोवर बांध के निर्माण पर कोई फर्क नहीं पड़ा तब लड़ाई विस्थापितों को बसाने और मुआवजा दिलवाने के सवाल पर केंद्रित हो गई। **लेकिन** लगातार आंदोलन का ही नतीजा रहा कि विस्थापन से पहले प्रभावित लोगों के पुनर्वास की व्यवस्था, पर्यावरण और दूसरे सामाजिक असर के बारे में देश भर में एक बहस खड़ी हुई। जहां पहले ऐसी **किसी** परियोजना में विस्थापितों का पुनर्वास व मुआवजा सरकारों के लिए कोई खास चिंता की बात नहीं थी, वहीं अब इसकी अनदेखी आसान करना आसान नहीं रह गया है। विकास जरूरी है, लेकिन अगर उसकी कीमत एक बड़ी आबादी के अपनी जमीन से उखड़ने और रोजी-रोटी गंवाने और लोगों के बुनियादी अधिकारों के हनन के रूप में सामने आती है तो यह स्थिति राज्यतंत्र को और साथ ही विकास नीति को भी कठघरे में खड़ा करती है

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 10-02-17

ग्रीन कार्ड पर कैंची

पहले मुस्लिम देशों पर 'इमिग्रेशन बैन' और अब **ग्रीन** कार्ड जारी करने पर आधी कटौती का इरादा सामने आने के बाद यह साफ हो गया है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ने चुनाव के दौरान जो और जैसे संकेत दिए थे, जिन्हें तब शायद उतनी गंभीरता से नहीं लिया गया था, वे अब उसी एजेंडे पर न सिर्फ आगे बढ़ चुके हैं, बल्कि पूरी शिद्दत से उसे लागू करने पर आमादा हैं। अमेरिकी संसद **में** पेश नए विधेयक के अनुसार, देश में ग्रीन कार्ड यानी आव्रजन का स्तर आधा करने का प्रस्ताव है। इसे अमेरिका का ग्रीन कार्ड हासिल करने या वहां स्थायी तौर पर बस जाने की चाहत रखने वालों के लिए बड़े झटके के रूप **में** देखा जा रहा है। माना जा रहा है कि विधेयक को ट्रंप **प्रशासन** का पूरा समर्थन हासिल है। दो शीर्ष सीनेटरों द्वारा पेश यह विधेयक यदि **पारित** हो जाता है, तो इसका सीधा और सबसे बड़ा असर उन **लाखों** भारतीय-अमेरिकियों पर पड़ेगा, जो इसके लिए लंबे समय से इंतजार कर रहे हैं। विधेयक में हर वर्ष जारी किए जाने वाले ग्रीन कार्ड या आव्रजन या कानूनी रूप से स्थायी निवास की वर्तमान सीमा दस लाख को कम करके आधा कर देने का प्रस्ताव है। विधेयक पेश करने वाले टॉम कॉटन रिपब्लिकन और डेविड पर्डू डेमोक्रेटिक पार्टी से हैं, यानी इस विधेयक को रिपब्लिकन और डेमोक्रेट, दोनों का साथ हासिल है।

अमेरिका में ग्रीन कार्ड पाने वाले तकनीकी या कानूनी रूप से तो अमेरिका-निवासी होते हैं, लेकिन पूर्ण तौर पर अमेरिकी नागरिकता मिलने तक उन्हें वोटिंग का अधिकार नहीं मिलता। अमेरिकी पासपोर्ट के लिए भी उन्हें अमेरिकी नागरिकता मिलने तक इंतजार करना पड़ता है। यह अलग बात है कि इस दौरान उन्हें अमेरिकी नियमों के अनुसार इनकम टैक्स फाइल करना होता है। किसी भी भारतीय को इसके लिए 10 से 35 साल तक इंतजार करना पड़ता है और इस वक्त भी करीब 50 लाख भारतीय-अमेरिकी ग्रीन कार्ड के लिए कतार में हैं। प्रस्तावित विधेयक कानून का रूप ले लेता है, तो यह इंतजार कई गुना ज्यादा लंबा हो जाएगा।

अमेरिका के इस ताजा काम को राष्ट्रपति ट्रंप की उसी मुहिम से जोड़कर देखा जाना चाहिए, जिसमें वह काफी सख्ती से 'अमेरिका फर्स्ट' की बात करते हैं। वह भूल जाते हैं कि अमेरिकी आईटी कंपनियों में बड़े स्तर पर भारतीय ही काम कर रहे हैं और उनकी साख इन्हीं के कौशल पर टिकी हुई है। जाहिर है, इस नए कानून से भारतीय युवा उम्मीदों को गहरा आघात लगेगा। एक बात तो मान लेनी चाहिए कि ट्रंप इसी तरह अपने इरादे और एजेंडे पर चलते रहे, तो अमेरिकियों को रोजगार दिलाने की झोंक में एक दिन वह सभी बाहरियों को बाहर का रास्ता दिखा देंगे। लेकिन क्या वह गूगल और माइक्रोसॉफ्ट जैसी हजारों अमेरिकी कंपनियों के भारतीय लीडरान को भी उतनी ही आसानी से बाहर का रास्ता दिखा पाएंगे, जो अपनी योग्यता और कुशलता से न सिर्फ इन कंपनियों को चला रहे हैं, बल्कि इनके जरिये तकनीक की दुनिया में एक नए युग की शुरुआत भी कर चुके हैं? विधेयक पेश करने के पीछे की मंशा भी उस बयान से साफ हो जाती है, जिसमें कहा गया है कि 'अब समय आ गया है कि हमारी आव्रजन प्रणाली अमेरिकी कर्मचारियों के हित में काम करना शुरू कर दे।' भारत ही नहीं, तमाम देशों के लिए यह सोचने का वक्त है कि वे अब भी अमेरिका की ओर देखते रहेंगे या अपने कौशल और अपनी मेधा का भविष्य बचाने के लिए कोई कारगर कदम उठाएंगे। उनकी चिंता अमेरिका के इन नए शगूफों के विपरीत असर से बचने-बचाने की ही नहीं, बल्कि अपने देश के रोजगार-परिदृश्य पर नए सिरे से समीक्षा करने की भी होनी चाहिए।

Date: 10-02-17

चुनाव से बड़े हैं जनजातीय मसले

मणिपुर में मेल-मिलाप के इन दावों से मूर्ख मत बनिए कि चार और आठ मार्च को होने वाले विधानसभा चुनावों के मद्देनजर तमाम नेता आम जनता के हितों की रक्षा को सर्वोपरि मानते हुए एक राय रखते हैं और साथ आ रहे हैं। मणिपुर भी जम्मू-कश्मीर की तरह भारत का एक अशांत राज्य है, जहां इन दिनों लोगों के जीवन के साथ घातक खिलवाड़ हो रहा है। और इसके लिए जिम्मेदार कोई एक नहीं, बल्कि सभी राजनीतिक पार्टियां व विद्रोही गुट हैं।मणिपुर में हालिया नाकेबंदी की शुरुआत एक नवंबर से हुई है, जब राज्य में नगाओं के सर्वोच्च गुट यूनाइटेड नगा काउंसिल (यूएनस) ने राज्य सरकार के फैसले खिलाफ नाकेबंदी की घोषणा की। उसका आरोप है कि राज्य सरकार अपनी नीतियों के बहाने नगाओं की जमीन हड़प रही है। विरोधस्वरूप उसने यहां के दो हाई-वे, जो वाकई यहां की जीवनरेखा हैं, उन्हें बंद करने की घोषणा की। इन दो हाई-वे में एक उत्तर से दक्षिण चलते हुए पड़ोसी नगालैंड से आता है और इंफाल घाटी व उससे आगे तक जाता है। जबकि दूसरा हाई-वे पश्चिम से पूरब चलते हुए पड़ोसी असम के सिलचर से यहां घाटी तक आता है। उल्लेखनीय है कि हाई-वे के आसपास के ज्यादातर उत्तरी व पश्चिमी पहाड़ी जिलों में नगाओं का ही नियंत्रण है।

केंद्र सरकार की कई दिनों की अनदेखी के बाद केंद्रीय अर्द्धसैनिक बल ईंधन और दूसरी जरूरी चीजों को ले जाने वाले ट्रकों के काफिले को सुरक्षा देने लगे हैं। जनवरी के चौथे सप्ताह में भारतीय वायु सेना के विमान सी-17 ग्लोबमास्टर द्वारा कुछ तेल टैंकरों को गुवाहाटी से राजधानी इंफाल

भी लाया गया था। यह केंद्र की भाजपा सरकार का एक अतिउत्साही कदम था, जिसने मणिपुर की कांग्रेस सरकार को फिर से हमलावर होने का मौका दे दिया। कांग्रेस का कहना है कि कानून व व्यवस्था 'राज्य का मामला' है, जो तकनीकी रूप से सही भी है। मगर सच यह भी है कि करीब तीन वर्ष होने को है, मगर मुख्यमंत्री ओकराम इबोबी सिंह इस मसले का हल नहीं ढूंढ़ सके हैं। इबोबी का यह लगातार तीसरा कार्यकाल है। और उनका तीनों कार्यकाल गलतियों और आतंक का काल माना जाएगा।यही वजह है कि इन पंक्तियों के लिखे जाने तक नाकेबंदी जारी है। हालांकि यह खत्म भी हो सकती है, क्योंकि सोमवार को नई दिल्ली में एक त्रिपक्षीय बैठक हुई है, जिसमें केंद्र, राज्य और यूएनसी के प्रतिनिधि शामिल हुए थे। अगर ऐसा होता भी है, तो राज्य की दो-तिहाई आबादी को सिवाय तात्कालिक राहत से ज्यादा कुछ मिलता नहीं दिख रहा। संभव है कि मणिपुर पहले की तरह ही खंडित रहे।दरअसल, मणिपुर में मैतेयी जाति का वर्चस्व है, जो गैर-आदिवासी तबका है। मुख्यमंत्री इबोबी सिंह भी इसी समुदाय से ताल्लुक रखते हैं। राज्य की आबादी में इसकी हिस्सेदारी करीब 60 फीसदी है। ये लोग मुख्यत: इंफाल घाटी में रहते हैं, जिसका क्षेत्रफल मणिपुर के कुल क्षेत्रफल का दसवां हिस्सा है। इंफाल घाटी पहाड़ियों से घिरी है, जहां नगा, कुकी और जोमी जनजाति रहते हैं। पहाड़ी क्षेत्र मणिपुर के कुल क्षेत्रफल का नौवां हिस्सा हैं।

यूएनसी का आरोप है कि उसे पिछले कुछ वर्षों से इंफाल के प्रशासनिक नियंत्रण से बाहर रखने की कोशिश हो रही है। वह यह भी आरोप लगा रही है कि इबोबी सरकार मैतेयी का पक्ष ले रही है। साल 2015 का उदाहरण सामने है, जब मणिपुर सरकार ने एक बिल पेश किया था। उसमें मणिपुर में न सिर्फ बाहरियों के प्रवेश रोकने की बात थी, बल्कि वहां रहने या कारोबार को लेकर जारी प्रतिबंधों में संशोधन की वकालत भी की गई थी। तमाम जनजातियों की नजर में यह एक भेदभावपूर्ण कदम था। इसी कारण दक्षिणी चुराचांदपुर जिले में, जहां जोमी जनजातियों का बड़ा प्रभाव है, दंगे भड़क उठे। पुलिस ने कड़ी कार्रवाई की, जिसमें कई प्रदर्शनकारियों की जानें भी गईं। लोगों ने इसके विरोध में मुर्दाघर में लाशों पर कोई दावा भी नहीं किया। हालांकि यह बिल कानून नहीं बन सका, क्योंकि कहा जाता है कि राष्ट्रपति ने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए।यूएनसी अगस्त, 2015 से तब ज्यादा आक्रामक हो गई, जब केंद्र सरकार ने नेशनल काउंसिल ऑफ नगालिम (इसाक-मुइवा) या एएससीएन (आई-एम) के साथ शांति समझौते की घोषणा की। वैसे देखा जाए, तो वह कवायद व्यावहारिक तौर पर निरर्थक थी और व्यापक नगा शांति समझौते की राह में उसका कोई महत्व नहीं था।असल में, नई दिल्ली और इंफाल के सरकारी ओहदेदार लंबे समय से कहते रहे हैं कि इसाक-मुइवा के खिलाफ यूएनसी एक मोहरा है। इसाक-मुइवा सबसे बड़ा नगा विद्रोही गुट है, जो अपने जातीय गठजोड़ के जरिये मणिपुर में उस क्षेत्रीय आधार को बढ़ाता जा रहा है, जिस पर यह नियंत्रण कर सकता है। मगर अब, यूएनसी और इसाक-मुइवा गुट कुछ हद तक नई दिल्ली के पक्ष में है। लिहाजा इंफाल से कोई लेनदेन न होने के कारण यूएनसी ने नाकेबंदी कर दी है।

मौका देखकर इबोबी ने भी बीते 25 नवंबर को पलटवार किया। पुलिस ने यूएनसी के अध्यक्ष और सूचना सचिव को गिरफ्तार कर लिया। मुख्यमंत्री के लिए यह एक सुनहरा मौका है, क्योंकि वह अपनी स्थिति फिर से मजबूत करना चाहते हैं और लोगों की इस धारणा को तोड़ना चाहते हैं कि उनका प्रशासन अप्रभावी और भ्रष्टाचार से लड़ने में विफल है। इस बीच, नौ दिसंबर को इबोबी ने सात नए जिलों के गठन की घोषणा भी कर दी, जिनमें से चार जिले पहले नगा बहुल जिले उखरूल, सेनापति, तामेंगलोंग और चंदेल के हिस्से थे। इन्हें प्रशासनिक रूप से गैर नागा क्षेत्र बनाकर अलग कर दिया गया।बहरहाल, इबोबी अब इस भावनात्मक मुद्दे को तूल दे रहे हैं, जिससे उनकी मैतेयी समर्थक बहुसंख्यक आभा और बढ़ रही है। हालांकि यह नाकेबंदी रहे या खत्म हो, इबोबी भी सत्ता में रहें या न रहें, मगर एक बात तय है कि अगर इससे पार पाने की जल्दी कोई पहल नहीं की जाती है, तो मणिपुर का भविष्य अंधकारमय है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)